आचार्य भर्तृहरि एवं आचार्य अभिनवगुप्त की दृष्टि से प्रतिभा

डॉ० कृष्णकान्त शर्मा

आचार्य भर्तृहरि के अनुसार प्रतिभा ज्ञान का वह प्रकार है, जो सदा हममें घटित होता रहता है तथा जिसकी जड़ हम में ही है। वस्तुओं को देखते समय तथा शब्दों को सुनते समय भी यह कार्य करती रहती है। प्रतिभा ज्ञान की चमक की तरह है, जिसका सम्बन्ध इन्द्रियों द्वारा प्रस्तुत विषयसामग्री से ही नहीं, अपितु किस परिस्थिति में क्या करना है, इससे भी है। आचार्य भर्तृहरि के कथनानुसार बड़े से लेकर छोटे तक सभी प्राणी, पशुपक्षी प्रतिभा से सम्पन्न हैं। वाक्यार्थविवेचन के प्रसंग में भर्तृहरि ने प्रतिभा को वाक्यार्थ कहा है। पदार्थज्ञान के अनन्तर यह सहसा स्फुरित होती है। यह अन्त:संज्ञा है। यह पदार्थ से भिन्न है। जैसा कि भर्तृहरि ने कहा है—

विच्छेदग्रहणेऽर्थानां प्रतिभान्यैव जायते।
वाक्यार्थ इति तामाहु: पदार्थैरुपपादिताम्।।[1]

कभी-कभी तो सम्पूर्ण वाक्य को सुने बिना ही वाक्यार्थ का ज्ञान हो जाता है।

यह प्रतिभा कैसी है? इसका उत्तर देते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि यह प्रतिभा अनाख्येय है। इदमित्थं रूप में इस प्रतिभा को दूसरों को बता पाना कठिन है। पर इस कारण इसके अस्तित्व का प्रतिषेध नहीं किया जा सकता । यह स्वसंवेदन का विषय है। हर व्यक्ति इसका अनुभव करता है। परन्तु स्वसंवेदन के समय स्वयं अनुभवकर्ता भी नियत रूप से इसका निरूपण नहीं कर पाता, दूसरों को कैसे बता सकता है! जिस प्रकार द्राक्षा, मधु, शर्करा आदि के माधुर्य का अनुभव हम स्वयं करते हैं, पर उस माधुर्यविशेष का निरूपण दूसरों के लिए कर पाना सम्भव नहीं है, ठीक उसी प्रकार प्रतिभा भी अनाख्येय है—

इदं तदिति सान्येषामनाख्येया कथञ्चन।
प्रत्यात्मवृत्ति सिद्धा सा कर्त्रापि न निरूप्यते।।[2]

इदमित्थं कर अनाख्येय होने पर भी हम इसके कार्य का प्रत्यक्ष कर सकते हैं, हम जान सकते हैं कि यह कहां विभ्रान्त होती है। जिस प्रकार वह्नि में विद्यमान दाहानुकूला शक्ति यद्यपि अनिर्देश्य है, तथापि फलमुखेन, आश्रयमुखेन अथवा अभिव्यञ्जकमुखेन उसका निरूपण किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार प्रतिभा सम्पूर्ण वाक्य में सम्पूर्ण वाक्यार्थरूपता को प्राप्त करती हुई पदार्थजन्य अभिव्यक्ति के विषय के रूप में विद्यमान रहती है। प्रतिभा ही असंसृष्ट पदार्थों को जोड़ती है।

प्राणिमात्र के इतिकर्तव्यता रूप समस्त व्यवहार प्रतिभामूलक हैं। प्रतिभा दो प्रकार की होती है—इदानीन्तनी और प्राक्तनी । इदानीन्तनी प्रतिभा संकेतग्रह के द्वारा शब्द से व्यवहारकाल में कदाचित् उत्पन्न होती है अथवा अनेक शास्त्रों के श्रवण एवं अभ्यास से साक्षात् उत्पन्न होती है। प्राक्तनी प्रतिभा शिशु एवं पशुपक्षी में देख सकते हैं। दोनों प्रकार की प्रतिभायें कवियों के कवित्व के हेतु हैं।

प्रतिभा समस्त प्राणियों में स्वत: उद्भूत होती है। यह द्रव्यविशेषों के परिपाक से बिना प्रयत्न के उत्पन्न होने वाली मदशक्ति के समान है।

यथा द्रव्यविशेषाणां परिपाकैरयत्नजा:।
मदादिशक्तयो दृष्टा: प्रतिभास्तद्वतां तथा।।[3]

इसी प्रतिभा के कारण पशु-पक्षी अपने-अपने स्वाभाविक कार्य बिना किसी प्रेरणा या शिक्षा के करते हैं। इसी के कारण पक्षी समय आने पर अपने घोंसले बनाते हैं और वसन्त के आगमन पर कोयल पञ्चम स्वर में कूजने लगता है—

स्वरवृत्तिं विकुरुते मधौ पुंस्कोकिलस्य क:।
जन्त्वादय: कुलायादिकरणे केन शिक्षिता:।।[4]

चूहा बिल्ली का आहार है, यह उसे किसने सिखाया? स्वामी के प्रति भक्ति कुत्ते को किसने सिखायी? मूषक-मार्जार, गो-व्याघ्र, अहिन-कुल इनमें परस्पर विद्वेष किसके कारण है? गाय-भैंस आदि को पानी में तैरना किसने सिखाया? प्रत्येक प्राणी की आहार आदि क्रिया अनादि प्रतिभा के कारण ही नियत है—

आहार प्रीत्यभिद्वेषप्लवनादिक्रियासु क:।
जात्यान्वय प्रसिद्धासु प्रयोक्ता मृगपक्षिणाम्।।[5]

इस प्रकार प्रतिभा अत्यन्त व्यापक है। यह सहज ज्ञान है। पशुपक्षियों की मूल प्रवृत्ति, नवजात शिशु की स्वत:स्फूर्त चेष्टाएं तथा उच्चकोटि के ज्ञान ये सब प्रतिभामूलक हैं। इसीलिए प्रतिभा को लोक प्रमाण के रूप में स्वीकार करता है—

प्रमाणत्वेन तां लोक: सर्व: समनुपश्यति।
समारम्भा: प्रतायन्ते तिरश्चामपि तद्वशात्।।[6]

हमारे अन्त:करण की प्रवृत्तियां चूंकि प्रतिभामूलक हैं अत: महाकवि कालिदास ने अन्त:करण को प्रमाण माना है—

"सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त: करणप्रवृत्तय:।" (शाकुन्तल 1/20)

अर्थात् किसी वस्तु के बारे में सन्देह होने पर सज्जन अपने अन्त:करण की प्रवृत्ति को प्रमाण मान कर निर्णय करते हैं। अन्त:करण की इस प्रतिभा ने ही कालिदास के दुष्यन्त को यह बताया था कि शकुन्तला क्षत्रिय द्वारा ही परिणययोग्य है। इस प्रकार प्रतिभा प्रमाण है। निमित्त भेद से यह प्रतिभा छ: प्रकार की है

स्वभावचरणाभ्यासयोगादृष्टोपपादितम् ।
विशिष्टोपहितां चेति प्रतिभां षड्विधां विदु:।।[7]

अर्थात् स्वभाव, चरण, अभ्यास, योग, अदृष्ट तथा विशिष्ट उपाधि इन छ: निमित्तों से प्रतिभा छ: प्रकार की हैं। शाखाप्लवन में कपि की प्रतिभा स्वभावहेतुक है। चरण का अर्थ है सदाचार अथवा शास्त्रविहित तप: स्वाध्यायादि।

चरण के कारण ही वसिष्ठ आदि को भूत भविष्यद् वर्तमान विषयक ज्ञान प्राप्त था। यह चरणनिमित्तक प्रतिभा है। अभ्यासनिमित्तक प्रतिभा से ही कूपखनन के समय विशेषज्ञ व्यक्ति पृथ्वी के भीतर तिरोहित जलस्रोत को पहचान लेते हैं। अदृष्टनिमित्तक प्रतिभा से राक्षस पिशाच आदि परकाय प्रवेश करने तथा अन्तर्धान आदि में समर्थ होते हैं। तपोयोगादि सिद्धि से सम्पन्न साधक के अनुग्रह से जो प्रतिभा उत्पन्न होती है, वह विशिष्टोपहित प्रतिभा है। जैसे महाभारत के युद्ध के समय सम्पूर्ण युद्धक्षेत्र की घटनाओं के सम्यक् दर्शन के लिए सञ्जय को कृष्णद्वैपायन के अनुग्रह से यह प्रतिभा प्राप्त हुई थी।

अब प्रश्न उठता है कि इस प्रतिभा का मूल स्रोत क्या है? यह कहां से प्राप्त होती है? इसके उत्तर में भर्तृहरि बताते हैं—

भावनानुगतादेतदागमादेव जायते।
आसत्ति विप्रकर्षाभ्यामागमस्तु विशिष्यते।।[8]

अर्थात् भावना से अनुगत आगम से ही यह प्रतिभानात्मक ज्ञान प्राप्त होता है। आगम का भावना से अनुगत होने का तात्पर्य है शब्दभावना से अनुगत होना। वह आगम कदाचित् आसन्न होता है। अर्थात् इसी जन्म में अवगत होता है और कदाचित् जन्मान्तर में। इस प्रकार आसत्ति और विप्रकर्ष के द्वारा शब्द ही प्रतिभा का हेतु है। शब्दभावना के कारण ही सद्योजात शिशु वागिन्द्रिय का प्रथम व्यापार कर पाता है, या साँस ले पाता है। इसी के कारण शिशु अपने मुख के तत् तत् स्थानों में वायु का अभिघात करा पाता है और ध्वनि को उत्पन्न करने में समर्थ होता है—

आद्यः करणविन्यासः प्राणस्योर्ध्वं समीरणम्।
स्थानानामभिघातश्च न विना शब्दभावनाम्।।[9]

आचार्य भर्तृहरि प्रतिभा को नित्य और शब्द प्रयोग का प्राक्तन मानते हैं। इसी के कारण शिशु न केवल वागिन्द्रिय के व्यापार में अपितु वस्तु के ज्ञान और इच्छा करने में समर्थ होता है। वाक्यपदीयकार के अनुसार यह शब्दभावना अनादि है। प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान ज्ञान के बीज के रूप में यह ज्ञात होती है। यह पौरुषेय नहीं है। शिशु का इन्द्रिय व्यापार किसी उपदेश के कारण नहीं, अपितु अपनी प्रतिभा के कारण ही हो पाता है। इस प्रकार प्रतिभा का स्रोत शब्दभावना है और शब्दभावना ही आगम है।

आगम केवल पशु-पक्षी एवं शिशुओं की प्रतिभा का ही स्रोत नहीं है, अपितु ऋषियों के प्रतिभा ज्ञान का भी स्रोत है। जैसा कि भर्तृहरि ने कहा है—

ऋषीणामपि यज्ज्ञानं तदप्यागमपूर्वकम्।[10]

प्राक्तन जन्म में शब्दप्रयोग का संस्कार उनमें भी पाया जाता है। हम दैनन्दिन व्यवहार में सदैव अनुभव करते हैं कि दूसरों के द्वारा उच्चारित शब्दों के सुनने पर प्रतिभा किस प्रकार उद्बुद्ध होती है। शब्द प्रतिभा के उद्बोध में हेतु है। पूर्वजन्म में श्रुतिविहित आचारों के अनुष्ठान से उनमें जो संस्कार उत्पन्न होता है, उसी से उनमें इस प्रातिभज्ञान का आविर्भाव होता है। अतः ऋषियों के प्रातिभज्ञान का मूल आगम ही है। जैसा कि भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के स्वोपज्ञवृत्ति में कहा है "तेष्वपि तदर्थज्ञानमार्षमृषीणामागमिकेनैव धर्मेण संस्कृतात्मनामाविर्भा वयतीत्या ख्यायते।"[11] वृषभदेव ने भी कहा है "आगमचोदिताचारानुष्ठानादभिव्यक्तधर्माणां तदुक्तपदाभ्यासाद् ज्ञाना

विर्भाव इति आगम एव मूलभूतम्।"[12] यहां पर यह अवधेय है कि गुरुशिष्य परम्परा के रूप में विद्यमान अविच्छिन्न शिष्टपरम्परा ही आगम है और वह आगम ही प्रतिभा का स्रोत है।

यहां आचार्य भर्तृहरि की दृष्टि से प्रतिभा पर विचार करने के पश्चात् आचार्य अभिनवगुप्त की दृष्टि से प्रतिभा पर संक्षेप में विचार करना प्रसङ्ग प्राप्त है। अभिनवगुप्त ने श्रीतन्त्रालोक में प्रतिभा को परा देवी के रूप में स्वीकार करते हुए कहा है—

नौमि चित्प्रतिभां देवीं परां भैरवयोगिनीम्।
मातृमान प्रमेयांशशूलाम्बुजकृतास्पदाम्।।[13]

प्रतिभा परा अर्थात् पूर्ण शक्ति है। वह विश्वोत्तीर्ण है, किन्तु विश्वमयता को स्वात्म में अभेद रूप से धारण करनेवाली है। वह प्रतिभा भैरवयोगिनी है। अर्थात् साक्षात् परप्रमाता भैरवरूप शिव से सदा समवायिनी है

या सा शक्तिर्जगद्धातुः कथिता समवायिनी ।[14]

परप्रमाता शिव से शाश्वत संयुक्त रहने के कारण वह प्रतिभा शिव की आत्मभूता शक्ति है। वह चिति की चैतन्य प्रज्ञा है। शाश्वत उल्लास की दिव्यता है।

चित् प्रतिभा चैतन्यात्मक इच्छा है। इच्छा ही प्रतिभा है, प्रज्ञा है। प्रमिति रूप से विद्योतमान यह प्रतिभा प्रमाता शिव का भी विश्रान्तिधाम है। आचार्य अभिनवगुप्त ने "लोचन" में भी प्रतिभारूप शिवाख्या पराशक्ति की वन्दना की है। और कहा है कि प्रतिभारूप पराशक्ति ही अपनी उन्मीलन शक्ति से विश्व का उन्मीलन क्षण भर में कर देती है—

यदुन्मीलनशक्त्यैव विश्वमुन्मीलति क्षणात्।
स्वात्मायतनविश्रान्तां तां वन्दे प्रतिभां शिवाम्।।[15]

कवि के सन्दर्भ में प्रतिभा की व्याख्या करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने प्रतिभा को अपूर्व वस्तु के निर्माण में समर्थ प्रज्ञा कहा है।

"प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा"।[16]

काश्मीर शैव दर्शन के अनुसार विश्व चित् का प्रतिबिम्ब है। स्वातन्त्र्यस्वभाव भैरव के चित्तत्वात्मक चिदाकांशरूपी चैतन्य दर्पण में यह विश्व प्रतिबिम्ब रूप से उल्लसित है। इसमें किसी अन्य की अपेक्षा नहीं होती। शिव का यह स्वातन्त्र्य ही विमर्श है। यह शिव का मुख्य स्वभाव है। निर्विमर्श प्रकाश की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जड़ से चेतन की यही विशेषता है कि यह समग्र का परामर्शक है। जैसा कि अन्यत्र भी कहा गया है—

अन्तर्विभाति सकलं जगदात्मनीह
यद्वद्विचित्ररचना मकुरान्तराले।
बोधः पुनर्निजविमर्शनसारवृत्या
विश्वं परामृशति नो मकुरस्तथा तु ।।[17]

अर्थात् विश्वात्मा के चैतन्य दर्पण के अन्तर अवकाश में अनन्त वैचित्र्य अवभासित है। बोध अपने विमर्श स्वभाव के बल पर विश्व को परामृष्ट कर लेता है। जड़ दर्पण में यह परामर्श नहीं होता,क्योंकि वह निर्विमर्श है। यह आमर्श सांकेतिक नहीं है। यह चिद्विमर्श के अतिरिक्त नहीं है। यह रसस्वरूप आनन्द से उदित है। तथा परावाक् स्वरूप है।

प्रतिभा को अन्य की अपेक्षा नहीं होती, इसे स्पष्ट करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने कहा है—

अनन्यापेक्षिता यास्य विश्वात्मत्वं प्रति प्रभो:।
तां परां प्रतिभां देवीं संगिरन्ते ह्यनुत्तराम्।।[18]

प्रभु की विश्वात्मता के प्रति जो अनन्यापेक्षिता है उसी स्वभावसत्ता को देवीरूप अनुत्तर परा प्रतिभा कहते हैं। निरतिशय स्वातन्त्र्यैश्वर्यचमत्कारी परा शक्ति ही अनुत्तरा शक्ति है। अनन्त शक्तियों का उल्लास इस प्रतिभा में समाहित है। सारा परामर्श इसी से होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि आचार्य अभिनवगुप्त ने प्रतिभा को परा शक्ति माना है। वह शिव की उन्मीलन शक्ति है, चिद्रूप है। आचार्य भर्तृहरि ने प्रतिभा का स्रोत आगम को माना है। भर्तृहरि के अनुसार आगम चैतन्य की भांति अविच्छिन्न रूप में विद्यमान रहता है—

चैतन्यमिव यश्चायमविच्छेदेन वर्तते।
आगम: ..... ।।[19]

जिस प्रकार 'मैं हूँ' के रूप में चैतन्य की प्रतीति अविच्छिन्न रहती है, ठीक उसी प्रकार आगम भी अनादि एवं अविच्छिन्न है। महामहोपाध्याय आचार्य रामेश्वर झा ने आगम को विमर्श रूप माना है और कहा है कि चित्स्वभाव आत्मा का जो आन्तर शब्दन है, विमर्शन है, वही अन्तरङ्ग स्वरूप है और वही प्रत्यक्ष का भी जीवन है। उससे जो जो विमर्श किया जाता है, वही-वही निश्चय होता है। वह विमर्श ही मुख्यत: आगम है। विमर्शजनक होने से शब्द भी औपचारिक रूप से आगम कहलाता है, क्योंकि वह शब्द विमर्शन में उपयोगी है।

आन्तरं चित्स्वभावस्य शब्दनं यद्विमर्शनम्।
अन्तरङ्ग स्वरूपं तत्प्रत्यक्षस्यापि जीवनम्।।
यद् यद्विमृश्यते तेन तत्तदेव भवेद्ध्रुवम्।
आगम: स विमर्शो हि प्रोच्यते मुख्यतो बुधै:।।
उपयोगितया तत्र उपचारेण कथ्यते।
शब्दोऽप्यागमशब्देन विमर्शजनकत्वत:।।[20]

वाक्यपदीयकार आचार्य भर्तृहरि के अनुसार वाग्रूप विमर्श शक्ति यदि प्रकाशरूप बोध से अलग हो जाय, तब प्रकाश में प्रकाशन की शक्ति ही नहीं रहेगी। क्योंकि स्फुरणात्मक विमर्श रूप शक्ति से ही प्रकाश की प्रकाशकता सिद्ध होती है—

"वाग्रूपता चेदुत्क्रमेदवबोधस्य शाश्वती।
न प्रकाश: प्रकाशते सा हि प्रत्यवमर्शिनी।।[21]

इस प्रकार चूँकि आचार्य भर्तृहरि प्रतिभा को आगममूलक और आगम को स्वसंवेदन रूप, विमर्श रूप मानते हैं तथा आचार्य अभिनवगुप्त भी प्रतिभा को परा शक्ति या चिद्विमर्श के रूप में स्वीकार करते हैं, अत: दोनों आचार्यों में प्रतिभा के विषय में एकवाक्यता है, ऐकमत्य है ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा।

सन्दर्भ

1- वाक्यपदीय 2/143
2- ,, 2/144
3- ,, 2/148
4- ,, 2/149
5- ,, 2/150
6- ,, 2/147
7- ,, 2/152
8- ,, 2/151
9- ,, 1/122
10- ,, 1/30
11- ,, स्वोपज्ञवृत्ति 1/30
12- वाक्यपदीय 1/30 पर वृषभदेव
13- श्रीतन्त्रालोक 1/2
14- ,, 1/2 पर "विवेक" में उद्धृत
15- ध्वन्यालोक लोचन प्रथमोद्योत का अन्तिम मङ्गल पद्य
16- ध्वन्यालोक लोचन 1/6 पर
17- ,, 3/65 पर उद्धृत
18- श्रीतन्त्रालोक 3/66
19- वाक्यपदीय 1/41
20- आगमविमर्श
21- वाक्यपदीय 1/116